वैकल्पिक जीविका का संदर्भ

सुनीता राव

सुनीता ATREE के साथ काम करती हैं। उनका प्रस्तुतीकरण अंडमान व निकोबार द्वीपसमूह के लिए पर्यावरण संरक्षण शिक्षा कार्याक्रम विकसित करने के अनुभवों और इस काम की शैक्षणिक चुनौतियों पर केंद्रित था।

सुनीता

मैं विप्रो, और खास तौर से प्रकाश व श्रीकांत का धन्यवाद देना चाहूंगी।

मैं शुरू में ही स्पष्ट कर देना चाहती हूं कि मैं शिक्षा की पृष्ठभूमि से नहीं हूं। मैंने मास्टर्स इन इकॉलॉजी किया और बाद में शिक्षा के क्षेत्र में आई। तो मेरी पृष्ठभूमि शिक्षा पद्धति की नहीं है। मगर मास्टर्स कार्यक्रम में हम 15 लोग थे और उनमें से पांच शिक्षा में गए, दो ATREE में स्नातकोत्तर स्तर पर और हम तीन स्कूली शिक्षा और शिक्षकों के साथ जुड़ गए। मैं कल्पवृक्ष समूह की सदस्य रही हूं, जहां मुझे ढेर सारी ऊर्जा और विचार हासिल हुए हैं। कल्पवृक्ष एक पर्यावरण समूह है जो 1989 में शुरू हुआ था। मेरा काफी सारा दर्शन और नज़रिया इसी समूह की देन है। कल्पवृक्ष की बदौलत ही मैंने संरक्षण शिक्षा की दिशा में काम करना शुरू किया था। अंततः मैं सिरसी - दरअसल सिरसी कस्बे से करीब बीस किलोमीटर दूर बस गई जहां मैं बरबाद भूमि के एक टुकड़े को पुनर्जीवित करने की कोशिश कर रही हूं। मैं एक महिला किसान बीज समूह, गृह वाटिका और बीज समूह के साथ भी काम करती हूं। मैं ATREE बैंगलोर की एक एडजंक्ट फेलो भी हूं।

इतना कह देने के बाद, तथाकथित पर्यावरण शिक्षा, संरक्षण शिक्षा में मैंने अपना काम दिल्ली में 1990-91 में शुरू किया था। हमने छोटी-छोटी कार्यशालाओं की एक ंखला आयोजित की थी जो राष्ट्रीय प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय द्वारा प्रायोजित थी। एक एहसास था कि मुझे पता नहीं है कि मैंने जो सारा विज्ञान पढ़ा था, उसका उपयोग कैसे करूं। अचानक मुझे लगा कि यह एक तरीका है जिसके ज़रिए आप यह सारी जानकारी एक भिन्न श्रोता समूह को उपलब्ध करा सकते हैं, उसे आनंददायक बना सकते हैं, और सार्थक बना सकते हैं। मुझे लगता है वही शुरुआत थी। उसके बाद, मैं अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह के लिए एक संरक्षण शिक्षा कार्यक्रम विकसित करने और डिज़ाइन करने के काम में खींच गई, जिसका श्रेय मद्रास क्रोकोडाइल बैंक के रॉम व्हिटेकर को जाता है। उस समय पता नहीं था कि मैं क्या कर रही हूं या कहां जा रही हूं मगर मुझे लगता है कि गहरे पानी में फेंक दिया जाना उपयोगी होता है, हालांकि कभी-कभी लगता है कि डूब रहे हैं।

संदर्भ-संवेदी सामग्री बनाने का महत्व

तकरीबन 18 साल पहले, मैंने उपयुक्त पाठ्य पुस्तकों के अभाव के संकट पर कुछ करना शुरू किया था। आज स्थिति काफी अलग है। मगर उस समय अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह जैसे स्थानों पर जो पाठ्य पुस्तकें होती थीं, वे दिल्ली से आती थीं। आप समझ ही सकते हैं कि ये किताबें कितनी अनुपयुक्त रही होंगी। इनमें स्थानीय पर्यावरण का लेशमात्र भी नहीं था। आगे बढ़ते हुए सबसे पहली बात मैंने यह पकड़ी कि एक स्थानीय भाषा परिवेश में ढली स्थान-आधारित सामग्री का वास्तविक, ठोस महत्व है। और स्थानीय भाषा परिवेश से मेरा आशय सिर्फ भाषा सम्बंधी नहीं है, अपितु उसके तमाम आयामों में स्थानीय भाषाई परिवेश से है। इस तरह की सामग्री किसी बच्चे या वयस्क को वे अवधारणाएं समझने में मदद करती है, जो शायद सार्वभौमिक हों। हमने देखा कि स्थान-आधारित सामग्री शिक्षा तंत्र में निवेश के लिहाज़ से भी लाभदायक होती है, और इस लिहाज़ से भी कि यदि बच्चा उसी पर्यावरण में एक ज़िम्मेदार नागरिक के रूप में रहने वाला है।

मैंने मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी स्कूलों के साथ काम किया है। सरकारी स्कूलों और शिक्षकों के साथ काम

करने के विशिष्ट मुद्दे हैं। कई विवशताएं होती हैं, जिनका ध्यान रखना होता है। मैं यह भी समझने लगी कि हम सबकी शिक्षा डर के साए में हुई है। डर एक कारगर औज़ार है, जिसका उपयोग शिक्षा तंत्र में लोग करते हैं। आप सवाल पूछने से डरते हैं। आज भी, मैं सार्वजनिक रूप से कोई राय व्यक्त करने से डरती हूं। इसके अलावा, काफी कम उम्र में ही जिज्ञासा को मार दिया जाता है; आपकी कल्पना शक्ति को उभरने से पहले ही खत्म कर दिया जाता है, और मौजूदा शिक्षा व्यवस्था में कोई तरीका नहीं है जिससे आपकी सवाल करने की और आकलन करने की क्षमता, आपकी विशेष कल्पना शक्ति का विकास किया जाता हो।

सवाल है कि यदि प्रमुख सरोकार यह है कि पर्यावरण शिक्षा या पर्यावरण के प्रति सरोकार को इस तंत्र में कैसे लाया जाए तो आगे कैसे बढ़ें? हां, सुप्रीम कोर्ट का यह निर्देश ज़रूर है कि सारे स्कूलों में, हर कक्षा में पर्यावरण विज्ञान (EVS) एक अनिवार्य विषय होना चाहिए जिसकी वजह से स्कूलों में पाठ्य पुस्तकों का धंधा एक बड़ा, मुनाफादायक धंधा हो गया है; निहायत टिकाऊ जीविका। मगर मैं इससे कुछ समय पहले की बात कर रही हूं।

इस मोड़ पर मैं एक संरक्षण शिक्षा कार्यक्रम चलाने का अपना अनुभव ठेठ शुरुआत से साझा करना चाहूंगी। मगर उससे पहले हमें यह सवाल पूछना चाहिए - पर्यावरण शिक्षा हो ही क्यों? यह सवाल हम लक्षित समूह से पूछ सकते हैं या उन लोगों से पूछ सकते हैं जिन्होंने हमें यह सामग्री बनाने को कहा है। हमें संरक्षण शिक्षा कार्यक्रम की ज़रूरत क्यों है? विभिन्न समूहों के पास इस सवाल का अलग-अलग जवाब होता है, जैसे 'हमारे सारे बुनियादी संसाधान, जिन पर हम निर्भर हैं, खत्म हो रहे हैं', 'पारंपरिक ज्ञान गुम हो रहा है', 'बेगानापन पैदा हो रहा है' वगैरह। अर्थात विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रत्युत्तर रहे हैं। मगर आम तौर पर इस बात पर सहमति रही है कि संरक्षण शिक्षा या पर्यावरण शिक्षा ज़रूरी है। ये प्रत्युत्तर सरकारी स्कूलों के शिक्षकों के थे।

दूसरी ओर, हमारे सामने ऐसी समस्याएं भी हैं, जैसे शिक्षकों पर समय का बहुत दबाव है, उन्हें जनगणना कार्य पर जाना पड़ता है, मध्यान्ह भोजन है, बार-बार तबादले हैं, और पढ़ाने में रुचि के अभाव का ज़िक्र करने की तो ज़रूरत ही नहीं है - मुद्दों का पूरा जखीरा है। सवाल है कि इन दोनों के बीच संतुलन कैसे बनाएं? संसाधन/हस्तक्षेप समूह तंत्र के अंदर कैसे काम करें और कैसे कुछ न्यूनतम इनपुट्स प्रदान करें जिनकी कुछ सार्थकता हो? हम इसी यथार्थ के अंतर्गत आगे बढ़े थे। मेरे नोट्स में 12 अलग-अलग मुद्दे या बिंदु हैं, जिन्हें किसी भी संरक्षण शिक्षा कार्यक्रम को चलाते हुए ध्यान में रखना बहुत उपयोगी होगा। मैं सिर्फ एक स्कूल में काम के संदर्भ में नहीं बल्कि एक तालुका या ज़िला स्तर या अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह जैसे किसी संघीय क्षेत्र के स्तर पर काम के संदर्भ में बात कर रही हूं। इसमें कार्यक्रम की शुरुआत, लोगों के साथ नेटवर्किंग, पद्धतियां, मूल्यांकन, विषयवस्तु के विकास, धन उगाही, प्रोजेक्ट लिखना, रिपोर्टिंग, कार्यक्रम का मूल्यांकन, निगरानी और बाहर निकलने की रणनीति सोचना वगैरह शामिल हैं। यदि किसी की रुचि हो, तो मुझे ज़रूर लिखें, मुझे यह छोटा-सा नोट साझा करके खुशी होगी, जो उपयोगी हो सकता है।

इस समय मैं विस्तार में नहीं जाऊंगी मगर इतना कहना चाहूंगी कि विगत वर्षों में, स्थानीय भाषा में स्थानबद्ध जानकारी के अभाव के प्रत्युत्तर में, जिन विभिन्न कार्यक्रमों के साथ मैं जुड़ी रही हूं, उनमें स्थान-आधारित शिक्षक मैनुअल का विकास किया गया है। शिक्षक जानकारी की तलाश में भटकना नहीं चाहते क्योंकि यह काम उनके लिए सचमुच मुश्किल होता है, खास तौर से दूर-दराज इलाकों में। वे एक पाठ्य पुस्तक के साथ बहुत सुरक्षित महसूस करते हैं। इसी वजह से ले-देकर हमें पाठ्य पुस्तक विधि को अपनाना पड़ा था। अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह के लिए हमने विशेष रूप से एक मैनुअल प्रकाशित किया था - Treasured Islands। इसमें गतिविधियों के ज़रिए उस जगह के विभिन्न महत्वपूर्ण मुद्दों और इकोसिस्टम पर विचार किया गया है। यह किताब हिंदी में भी उपलब्ध है। दरअसल, एकलव्य के सुशील जोशी ने इसका अनुवाद किया था। हमने जो भी सामग्री प्रकाशित की है, उस पर कोई कॉपीराइट नहीं है। मैंने सुना है कि वे इस किताब को बंगाली और निकोबारीज़ में भी प्रकाशित करने वाले हैं। मैं अनुवाद शब्द का उपयोग नहीं करना चाहती क्योंकि वह सही नहीं है। हम कह सकते हैं कि इसे किसी

अन्य भाषाओं में प्रस्तुत करना है।

अनुसंधान में प्रायः ऐसा होता है कि शोधकर्ता, चाहे वे समाज वैज्ञानिक हों, मानव वैज्ञानिक हों या इकॉलॉजीविद्, वे किसी क्षेत्र में, खास तौर से ग्रामीण क्षेत्र में जाएंगे, आंकड़े इकट्ठे करेंगे, रिपोर्ट या शोध प्रबंध प्रकाशित करेंगे, और इस रिपोर्ट की विषयवस्तु कभी भी वापिस समुदाय में नहीं पहुंचती, मेरे हिसाब से यह एक अपराध है। खास तौर से यदि आप यह देखें कि परिष्कृत वैज्ञानिक जानकारी को एक ऐसे रूप में उपलब्ध कराना कितना ज़रूरी है जिसे उस स्थान के समुदाय समझ सकें, उपयोग कर सकें, जहां से यह मूलतः आई है, या वे लोग इसका उपयोग कर सकें जो उस समुदाय के साथ काम कर रहे हैं। यह काम हमने काफी सजगता से करने की कोशिश की है, चाहे बात अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह की हो, लक्षद्वीप की हो, दिल्ली की हो या कर्नाटक के वन्यजीव अभयारण्य की।

हमने अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह और लक्षद्वीप में कार्यक्रम शुरू किया था क्योंकि ये भारतीय प्रायद्वीप के दोनों ओर दो संघीय क्षेत्र हैं। अपनी द्वीपीय इकोसिस्टम के कारण दोनों काफी नाज़ुक स्थान हैं। अंडमान-निकोबार में काफी आबादी भारतीय मुख्यभूमि की है। मुख्यभूमि के निवासियों के लिए यह एक दंडात्मक उपनिवेश था, जबकि स्थानीय आदिवासी वहां सदियों से रहते आए हैं। इसकी वजह से कई मुद्दे और समस्याएं उभरीं। दूसरी ओर, लक्षद्वीप, जो कोरल एटॉल (मूंगा चट्टानों से बने) द्वीपों का एक झुंड है, में आबादी स्थानीय है। जब हमने लक्षद्वीप में पर्यावरण के मुद्दों की प्राथमिकता तय करना शुरू किया, जो हमारे लिए एक महत्वपूर्ण काम था, तो सबसे पहले हमने स्थानीय लोगों से यही पूछा था कि 'आपको अपने परिवेश के बारे में कौन-सी चीज़ परेशान करती है?' और कई लोगों का जवाब था, वैश्विक तपन यानी ग्लोबल वार्मिंग। इस पर हम चकित रह गए क्योंकि मुख्यभूमि पर उस समय (1995 में) ग्लोबल वार्मिंग की बातें नहीं होती थीं।

पिछले वर्ष हमने संरक्षण शिक्षकों के लिए एक संसाधन संकलन तैयार किया है, क्योंकि वैसे जाकर फिल्में, किताबें, दस्तावेज़ या गतिविधियों के विचार हासिल करना बहुत कठिन होता है। इस तरह संकलित सामग्री को एक सीडी के रूप में तैयार किया गया है। सुझाव और नई सामग्रियों का बेशक स्वागत है। कोई भी यह सीडी देखना चाहे, तो मैं खुशी-खुशी दूंगी। यह विप्रो फेलो के लिए भी एक अच्छा प्रोजेक्ट हो सकता है क्योंकि यह संकलन बहुत जल्दबाज़ी में हम मुट्ठी भर लोगों ने तैयार किया है।

शिक्षा के ज़रिए वैकल्पिक जीविका को बढ़ावा

परंतु ऐसे कार्यक्रम तैयार करने या ऐसी शिक्षण सामग्री बनाने से आगे हम क्या करें? इस सवाल ने मुझे काफी परेशान किया। इसी दौरान, खुद अपनी ज़िन्दगी में मैं कर्नाटक के पश्चिमी घाट में सिरसी चली गई, और वहां ज़मीन के एक टुकड़े पर रह रही हूं, फॉरेस्ट गार्डनर के रूप में, और बातें करने की बजाय टिकाऊ जीवन के कुछ व्यावहारिक सबक सीख रही हूं। वहां मैं एक कार्यक्रम से भी जुड़ी रही हूं, जिसमें औपचारिक व औपचारिकेतर, दोनों तरह की शिक्षा में संरक्षण शिक्षा की संभावनाओं का आकलन किया गया। काफी सारा वास्तवक सीखना गैर-औपचारिक स्तर पर होता है। इस कार्यक्रम का एक पहलू यह था कि अत्यंत विविधतापूर्ण गृह वाटिका के रख-रखाव में महिलाओं की भूमिका पर विचार किया जाए, जिसमें कक्षा के लिए सामग्री उपलब्ध कराने की व्यापक संभावनाएं हैं। आगे चलकर हमने जो एक पोस्टर बनाया था, उसमें काफी सच्चाई है, पोस्टर में कहा गया था, 'बगीचा लगाओ, बच्चों की परवरिश करो, पाठ्यक्रम बनाओ'। चूंकि आप बच्चों को किसी वन्यजीव अभयारण्य में नहीं ले जा सकते, इसलिए गृह वाटिका जैसी आसान या पेचीदा चीज़ सीखने का एक समृद्ध स्रोत हो सकती है। मालनाड होम गार्डनर्स और सीड कीपर्स कलेक्टिव के निर्माण में मदद देने की मेरी सहभागिता यहीं से शुरू हुई थी। इसके अंतर्गत हम लोग खाद्य सुरक्षा, पोषण और पहुंच तथा पारंपरिक बीजों के संरक्षण पर ध्यान दे रहे हैं। एक समय पर महिलाओं ने कहा, "ये संरक्षण-वंरक्षण हमें समझ नहीं आता। हम पर्यावरण विशेषज्ञ तो हैं नहीं

जिन्हें प्रोजेक्ट मिलते हैं, पैसा मिलता है। हमारे लिए तो यदि इसमें पैसा नहीं है, तो सारे संरक्षण और शिक्षा का कोई मतलब नहीं है।" इसके मद्दे नज़र हम सोचने लगे कि आगे क्या करें। व्यापार और अर्थशास्त्र का यह पूरा दूसरा आयाम संरक्षण और शिक्षा के काम में भूमिका निभाने लगा मगर यह भी ज़रूरी था कि इसका इकॉलॉजिकल व सांस्कृतिक दृष्टि से भी कुछ अर्थ हो। मैं सोचने लगी कि कैसे हम सीखने की किसी खास स्थिति के लिए उपयुक्त सामग्री बनाने से आगे जाएं और पर्यावरण-स्नेही या इकॉलॉजी की दृष्टि से संवेदनशील जीविकाओं या उद्यमों पर ध्यान देना शुरू करें। यदि संरक्षण शिक्षा और टिकाऊपन को सार्थक बनाना है तो कहीं न कहीं इन दोनों को साथ आना पड़ेगा, इनके बीच कुछ परस्पर सहयोग होना पड़ेगा।

यहां विभिन्न स्तरों पर शिक्षा से जुड़े लोगों का इतना विविध समूह मौजूद है, तो सवाल यह है कि हम कैसे एक साथ आकर सोचें कि छोटे-बड़े ढंग से हम शिक्षा व्यवस्था के अंदर उपयुक्त, टिकाऊ जीविका उपलब्ध कराने के इस पूरे, बड़े व अपेक्षाकृत जटिल मुद्दे के बारे में क्या योगदान कर सकते हैं? क्योंकि फिलहाल मुख्यधारा में इस तरह की जीविकाएं बहुत कम उपलब्ध कराई जाती हैं। गांव में मैं लगातार जीविका की समस्या का सामना करती हूं। बच्चे ज़्यादातर अंग्रेज़ी, गणित और थोड़ी विज्ञान में मदद के लिए आते हैं। साथ ही साथ वे यह पूछते हैं, 'हाई स्कूल या हायर सेकंडरी या डिग्री मिलने के बाद हम क्या करें? कहां जाएं? हम खेती या मछली पालन में लौटना नहीं चाहते। हम शहर जाना चाहते हैं या कुछ अलग करना चाहते हैं। हमारे पास क्या रास्ते हैं?' कस्बों में कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रम चलते हैं जो मुख्य रूप से इस बात पर ध्यान देते हैं कि शहरी इलाकों की बढ़ती ज़रूरतों के हिसाब से ग्रामीण आबादी को खपाने का सबसे बेहतर तरीका क्या हो। सबसे लोकप्रिय है कंप्यूटर कोर्सेस और अंग्रेज़ी बोलने के कोर्सेस। इन्हें करके युवा लोग बीपीओ या कॉल सेंटर्स में खप जाते हैं। मेरे एक पड़ोसी ने एक बीपीओ में नौकरी पा ली मगर वह खुश नहीं था। उसने मुझे फोन किया और मैंने उसका संपर्क इस अद्‌भुत संस्था एपीडी - एसोसिएशन फॉर पीपल विद डिसएबिलिटी - से करवा दिया। मेरा वह पड़ोसी आज बैंगलोर में उनकी फलोद्यान शाखा में प्रशिक्षकों का प्रशिक्षक है। केलासनहल्ली का उनका 5 एकड़ का फार्म वहां से पास ही है। मुझे वहां से लगातार एसएमएस और ईमेल संदेश आते रहते हैं, 'जैविक खेतों के प्रबंधन के लिए कृषि स्नातकों की तत्काल ज़रूरत है' क्योंकि जैविक खेती सचमुच चल निकली है और मुख्यधारा में प्रवेश करने की कोशिश कर रही है। मैं अक्सर यह सोचती रहती हूं कि जैविक खेत संभालने के लिए कृषि स्नातक की ज़रूरत क्यों है। यही काम 8वीं उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण छात्र भी कर सकते हैं। 4-6 महीने का प्रशिक्षण कार्यक्रम किसी को भी जैविक खेती के लिए तैयार कर देगा। उन्हें थोड़ा-बहुत मार्केटिंग भी सिखाया जा सकता है, उन्हें हिसाब-किताब रखना होगा और वे शारीरिक श्रम से कतराएंगे भी नहीं। हमारी शिक्षा व्यवस्था तो हमें सिखाती है कि मिट्‌टी को हाथ लगाना ओछा काम है, हमें हीन बना देता है।

मैंने अब तक जो कुछ कहा उसका सार यह है - क्या हम, छोटे पैमाने पर ही सही, ऐसे वैकल्पिक कोर्स उपलब्ध करा सकते हैं या शिक्षा व सीखने की प्रक्रिया के ज़रिए टिकाऊ जीविका के लिए किसी रणनीति या कार्य योजना पर काम कर सकते हैं? मैंने ऐसे कुछ सुझाव लिख रखे हैं, जिन्हें मैं आपके साथ साझा करना चाहूंगी, और हम इस सूची में नए-नए विचार जोड़ते जा सकते हैं। मेरे ख्याल में सुझावों की ज़रूरत भी इसीलिए उभरी है क्योंकि सरकार की ओर से कोई खास नवाचार नहीं हुए हैं। अर्थ व्यवस्था संकीर्ण से संकीर्ण होती जा रही है।

मैं उस दिन नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडीज़ के किसी व्यक्ति से बात कर रही थी और उन्होंने मुझे यह बात इस तरह समझाई कि आपका स्वायत्तता का एहसास भी छीना जा रहा है। जीविका के कई विकल्पो को मान्य नहीं किया जाता है, और आपको उनके मूल्य का अनुमोदन करना होगा। लोग टोकरियां बनाकर जीवन निर्वाह नहीं कर सकते। एक संदर्भ बनाना होगा, एक व्यापक चित्र निर्मित करना होगा, जिसके तहत टोकरी बनाने वाले ठीक-ठाक रोज़ी-रोटी कमा सकेंगे और उनका कुछ आत्म सम्मान भी रहेगा। हो सकता है कि यह नामुमकिन और कल्पनालोक की बात लगे, मगर बदलाव लाने का, हरित अर्थ व्यवस्था की शुरुआत का और किसी तरह के

'इकॉलॉजिकल प्रजातंत्र' को अमल में लाने का यह एक महत्वपूर्ण तरीका है। आजकल 'इकॉलॉजिकल प्रजातंत्र' शब्द लोकप्रिय होता जा रहा है।

मैंने कुछ संभावनाएं प्रस्तुत करने की कोशिश की है, मगर ये तो मात्र मेरे विचार हैं और बहुत सीमित हो सकते हैं। मैंने सीखने और करने के तीन अलग-अलग सूत्रों पर ध्यान केंद्रित किया है। एक, स्वाभाविक रूप से सोचने का है - संज्ञान पक्ष, अपनी खोपड़ी का इस्तेमाल करना। मगर आपको लोगों के लिए अपने हाथों के उपयोग के रास्ते भी प्रदान करने होंगे और उन लोगों के लिए भी गुंजाइश बनानी होगी जो अपने दिल का उपयोग कर सकते हैं। हमें इन तीनों चीज़ों को बराबर महत्व देना होगा - सीखने के तीन H (head, hands, hearts) क्योंकि फिलहाल हम सिर्फ खोपड़ी पर फोकस करते हैं।

खेती, खाद्यान्न, और जैविक बीज उत्पादन में अपने अनुभव के मद्दे नज़र, टिकाऊ जीविका के संदर्भ में हमें निम्नलिखित क्षेत्रों को संबोधित करना होगाः भोजन बगिया, बढ़ईगिरी, चिनाई, या लोहारी के लिए उपयुक्त औज़ारों व हुनर की ज़रूरत, फलोद्यान, सिंचाई, वास्तुकला, और ऊर्जा के टिकाऊ विकल्प। उदाहरण के लिए यदि बायोगैस मैसन के रूप में प्रशिक्षित लोग आसानी से उपलब्ध हों, तो आम लोगों के लिए यह कहीं अधिक आसान हो जाता है कि वे घर पर छोटा-सा संयंत्र लगाकर खाना पकाने की ऊर्जा के बारे में आत्म निर्भर हो जाएं। बैंगलोर में एक सज्जन हैं जो ग्रामीण युवाओं को सौर लालटेन तैयार करने का प्रशिक्षण देते हैं। यह एक बढ़िया प्रयास है। मुख्यधारा कैरियर्स के साथ-साथ बेशक हमें पारंपरिक जीविकाओं पर भी ध्यान देना होगा। उदाहरण के लिए, जो लोग कई पीढ़ियों से गैर-काष्ठ वनोपज संग्रह करते रहे हैं, जैसे बीआर पर्वतों के सोलिगा लोग शहद संग्रह करते हैं, या वे लोग जो आंवला बीनते हैं। यहां VGKK और ATREE जैसी संस्थाओं ने संरक्षण व जीविका कार्यक्रम चलाए हैं।

वानिकी में भी देसी प्रजातियों की पौध शालाएं लगाने और इस काम को पड़त भूमि प्रबंधन व विकास से जोड़कर करने की विपुल संभावनाएं हैं। यह एक क्षेत्र है जहां काम बहुत कम हुआ है। मुझे लगता है कि शहरों में कचरे का प्रबंधन एक और क्षेत्र है, जहां कचरा बीनने वाले कचरा प्रबंधक बन सकते हैं। दस्तकारी एक और क्षेत्र है। बेलगांव के गोपी कृष्ण श्रमिक कला संघ के सदस्य हैं। इस संघ में 400 से ज़्यादा पारंपरिक दस्तकार हैं, जो घास और ऊन जैसे विभिन्न प्राकृतिक रेशों के साथ काम करते हैं। इन्हें कुछ डिज़ाइन इनपुट प्रदान किए जाते हैं, और ये सब पारंपरिक हुनर का उपयोग करते हैं। ये सब आमदनीजनक रोज़गार में लगे हैं और साथ में स्वयं अपने और अपने काम के प्रति सम्मान का एक भाव भी है। गोपी इसे सिर्फ एक व्यापार के रूप में नहीं देखते, बल्कि इसके सांस्कृतिक व इकॉलॉजिकल धरातल को लेकर भी जागरूक है। यह बात इस तरह के सारे इनपुट्स व प्रयासों के लिए अनिवार्य है।

इनके अलावा लोक-चिकित्सा (ethno-medicine) भी है जिस पर काम किया जा सकता है। मगर हो सकता है कि कुछ लोग इस तरह के क्षेत्रों से न जुड़ना चाहें क्योंकि वे शहर या कस्बों में बसना चाहते हैं। उनके लिए मैं कहूंगी कि हमें पर्यावरण कानून, और विकास, प्रशासन, नीति व नियोजन के क्षेत्र में काम करने के लिए लोग चाहिए। हमें ऐसे बढ़िया, प्रशिक्षित लोग चाहिए जिनके पास इन क्षेत्रों में तथा समग्र जीवन, स्वास्थ्य व परामर्श सम्बंधी अन्य कार्य करने के लिए ज़रूरी हुनर हों। इनमें से एक या कुछ या समस्त विकल्प उपलब्ध कराते हुए यह बात ध्यान में रखनी होगी - शिक्षा के ज़रिए बाह्य विश्व से जूझना सिखाते हुए विद्यार्थी को, वह चाहे जहां भी हो, एक अंदरूनी स्थिरता और आत्म विश्वास हासिल होना चाहिए। यदि हम वास्तव में चाहते हैं कि हमारा सीखना समूचे अर्थ में टिकाऊ जीवन का मार्ग प्रशस्त करे और यदि टिकाऊपन की शिक्षा को सार्थकता प्रदान करना है, तो ये कुछ संभावनाएं हैं, जिनके बारे में हम सोच सकते हैं।

मैं यहां की टीम को धन्यवाद देना चाहूंगी कि उन्होंने मुझे बोलने के लिए इतना सारा समय दिया। यह देखकर

खुशी होती है कि इतना समय संरक्षण शिक्षा को दिया गया है, क्योंकि हमारे क्षेत्र में अक्सर संरक्षण शिक्षा को पेड़ लगाने और चित्र बनाओ प्रतियोगिताओं से ज़्यादा कुछ नहीं समझा नहीं जाता।

वेणु

शुक्रिया सुनीता। हमारे पास टिप्पणियों और सवालों के लिए 15 मिनट हैं।

रोहित

सुनीता, आपने ढेर सारी महत्वपूर्ण बातें कही हैं। क्या आप हमें इस बात की एक झलक दे सकती हैं कि सरकारी स्कूलों के साथ काम की प्रक्रिया और विषयवस्तु क्या थी? यह हमारे अपने काम से सीधे सम्बंधित है। आपने कहा था कि आपने सामग्री विकसित की थी। मगर क्या आप यह बता सकती हैं कि स्कूलों के साथ आपके काम की प्रकृति क्या थी और इसे कार्रवाई और पर्यावरण शिक्षा का रूप कैसे दिया गया था?

सुनीता

हम जानते थे कि शुरुआती अंतर्क्रिया के बाद हम बच्चों के साथ संपर्क को जारी नहीं रख पाएंगे, तो हमें लगा कि सारा निवेश शिक्षकों में करना चाहिए। इसलिए काफी सारा शिक्षक प्रशिक्षण किया गया, हालांकि जो कुछ हुआ, उसकी सारी बातें इतने कम समय में करना संभव नहीं हैं। कभी-कभार, जब संभव हुआ हमने स्थानीय समुदाय के साथ भी अंतर्क्रिया की। तो यही तरीका रहा।

जब फंड में गुंजाइश रही, तो हमने एक और काम यह किया कि शिक्षकों व छात्रों के साथ बारंबार अंतर्क्रियाएं की, कार्यशालाएं कीं, समृद्धिकरण सत्र किए, आउटडोर ट्रिप्स और फील्ड विज़िट्स कीं, क्योंकि हमारे काम में उस नज़रिए को बदलना भी शामिल था जो एक खास सामाजिक परिवेश में निर्मित हुआ है। उदाहरण के लिए, उन्हें शिक्षा को एक खास ढंग से देखने की आदत है, उन्हें सेकंडरी स्कूल प्रमाण पत्र चाहिए, बस। उन्हें इस पर्यावरण के मुद्दे के महत्व का कायल करने के लिए हमें बारंबार कार्यशालाएं और अंतर्क्रियाएं और परस्पर विश्वास निर्मित करना मददगार लगे।

रोहित

नहीं, मैं जानना चाहता था कि इन कार्यशालाओं के ज़रिए आप शिक्षकों और बच्चों को क्या बताने की कोशिश करते हैं।

सुनीता

काम के विस्तार के तहत कम से कम छः अंतर्क्रियाएं ज़रूरी होती थीं क्योंकि हम अक्सर बहुत बड़े धरातल पर काम कर रहे थे। इसीलिए मुझे लगता है कि छोटे पैमाने के काम महत्वपूर्ण है। यह एक सबक हमने सीखा है। विषयवस्तु भी ज़रूर बदलेगी। शुरुआत हम करते थे शिक्षकों द्वारा अपने-अपने परिचय से, जिसमें वे अपने बारे में बताएं, अपनी समस्याओं और विवशताओं पर बात करें, और फिर हम क्रमिक रूप से जीवन के लिए सीखने की यह अवधारणा प्रस्तुत करते थे। बच्चे सीख तो स्कूल में रहे हैं, मगर जीवन के लिए सीखने के लिए क्या करते हैं और जीवन के लिए सीखने के लिए उन्हें कौन-से वास्तविक हुनरों की ज़रूरत है?

मगर हमें इस बात को लेकर भी बहुत सचेत रहना होता था कि वे जीवन के लिए सीखने की रुमानियत से दूर रहें क्योंकि हमारे लक्षित समूह को अत्यंत ठोस, यथार्थ उत्तर व समाधान व संभावनाओं की ज़रूरत है क्योंकि वे कई चुनौतियों और परिस्थितियों का सामना करते हैं, जो कई बार निहायत कठोर व थकाऊ होती हैं। तो हम वास्तव में शिक्षा पद्धति के मुद्दों में नहीं घुसे। हमें उपलब्ध समय तथा अन्य उपलब्ध संसाधनों के अंदर काम करना था। इसकी अपनी खामियां भी थीं, इस अर्थ में कि यदि आप इसे आप हर जगह लागू करें, तो उदाहरण के लिए,

यदि आप आज अंडमान-निकोबार के सारे स्कूलों में जांच करें, तो मुझे पता नहीं कि उनमें पर्यावरणीय संवेदना का क्या स्तर होगा, किस तरह की पर्यावरणीय नैतिकता उन्होंने अंगीकार की होगी, क्योंकि यह भी एक पहलू था जिसे हम शामिल करना चाहते थे।

दूसरा हिस्सा था, शिक्षकों और बच्चों, खासकर शिक्षकों को पाठ्य पुस्तक नज़रिए से बाहर खींचना। यह ज़रूर है कि हमने मैनुअल प्रदान किया था मगर हमारा प्रयास उन्हें यह बताने का था कि कैसे अनुभव-आधारित सीखना संभव है। कई बार हम जंगल की सैर पर जाते, और यह सिर्फ सैर होती, प्रजातियों की पहचान की कोई कोशिश नहीं होती थी और वापिस लौटकर वे, जो कुछ देखा था, उसके बारे में बताएंगे या चित्र बनाएंगे, या जो कुछ सुना था, उसे गीत के रूप में सुनाएंगे। हमने इस तरह के अभ्यास आज़माए हैं। मैंने अनुभव किया है कि अनुभव-आधारित सीखने का रास्ता लंबा रास्ता है। यह वाकई एक धीमी प्रक्रिया है और इसमें काफी मेहनत लगती है। यह एक चीज़ थी जिसकी उम्मीद हम नहीं कर सकते थे कि शिक्षक अपनी कक्षा में दोहराएंगे, खास तौर से सरकारी स्कूलों में। मगर कुछ शिक्षकों ने इसकी शुरुआत तो की थी। मुझे याद है, शिक्षकों के एक दल को एक उथले ज्वार गड्ढे (लैगून) में ले गए थे और हमने उन्हें जुगाड़ु, स्थानीय रूप से बनाए गए स्नॉर्कल्स दिए थे। हमने उनसे कहा कि अपना सिर पानी में डुबाएं। वे अपनी साड़ियों और कुर्ता-पजामों में घूम रहे थे, और उन्होंने अपने सिर पानी में स्नॉर्कल्स में घुसाए थे। वे 30-40 सालों से अंडमान-निकोबार में रह रहे थे, और वे कभी पानी में नहीं उतरे थे। मगर इस तरह का एक अनुभव आपका पूरा रवैया बदल सकता है।

तीसरा काम हमने यह किया कि कक्षा में पाठ्य पुस्तक आधारित आसान गतिविधियां कीं और पाठ्यक्रम के अन्य हिस्सों से उनकी कड़ियां जोड़ीं। उदाहरण के लिए कक्षा 7 की भूगोल की पुस्तक के अध्याय 6 में आपके आसपास के जंगल या आपके आसपास की किसी खास परिस्थिति से सम्बंधित विषय है जो पाठ्यक्रम के अन्य हिस्सों से कड़ियां प्रदान करता है क्योंकि यह भी संरक्षण शिक्षा का एक अहम हिस्सा है, इसे नक्शों या भूगोल से जोड़कर देखना।

मुझे पता नहीं कि क्या आपको अपने सवाल का जवाब मिला।

रोहित धनकर

हां, कुछ हद तक।

माया मेनन, दी टीचर फाउंडेशन

मैं जानना चाहती थी कि जब आप शिक्षकों और बच्चों व सरकार के साथ काम करते हैं, तो क्या बच्चों के साथ काम करना सबसे सरल होता है? जहां तक शिक्षकों का सवाल है - वे प्रशिक्षण व सीखने की इस अनुभव-आधारित शैली को कैसे लेते हैं? कुल मिलाकर नज़रिया क्या था? क्या उन्होंने यह कहते हुए आनाकानी की कि 'नहीं, हम नहीं करना चाहते' या क्या उन्हें यह ज़रूरी और उपयोगी लगा कि जो कुछ कार्यशाला में उन्होंने सीखा है उसे अपनी कक्षा में और शिक्षण में लेकर जाएं?

सुनीता

लक्षित समूह में से 10-15 प्रतिशत संवेदी लगते हैं, जो बढ़िया प्रतिशत है। प्रत्युत्तर काफी मिला-जुला रहा है। कुछ बहुत बढ़िया लोग थे; ऐसे लोग भी थे जिनकी कोई रुचि नहीं थी और वे सिर्फ इसलिए आए थे कि उन्हें कार्यशाला में आने का आदेश मिला था।

आपके सवाल के दूसरे हिस्से के बारे में, हां कुछ विरोध था। मुझे लगता है, और लोगों ने भी बताया है कि शिक्षा एक अत्यंत धीमी प्रक्रिया है। आपको लगे रहना पड़ता है। इसके साथ जूझना पड़ता है, और सुधार करते रहना पड़ेगा।

संध्या

मैं एक टिप्पणी है। मुझे लगता है कि पूरी बात का निचोड़ दो चीज़ों में सिमट जाता है - शिक्षक और पाठ्यक्रम। शिक्षक को वाकई संवेदनशील और सृजनात्मक होना चाहिए क्योंकि वह किसी भी पाठ्यक्रम को प्रासंगिक बना सकती है। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह कहां है। वह किसी ढांचे में हो सकती है, वह फील्ड में हो सकती है, कहीं भी हो सकती है। मुद्दा यह है कि शिक्षक में उस तरह की संवेदनशीलता हो। मगर यह संवेदनशीलता कैसे पैदा की जाए? यह बहुत बड़ा, और मेरे ख्याल में प्रमुख सवाल है।

दूसरी बात प्रासंगिक पाठ्यक्रम और संवेदनशील पाठ्यक्रम से सम्बंधित है। मगर पाठ्यक्रम के पीछे विचार क्या हो? हम बच्चे के पर्यावरण, बच्चे के जीवन, बच्चा जहां रहता है उस स्थान के लिए प्रासंगिक पाठ्यक्रम कैसे तैयार करें? मेरा ख्याल है कि यदि हम इन दो चीज़ों में थोड़ा-सा भी परिवर्तन कर सकें, तो हमारी कक्षाओं में काफी बदलाव आएगा, वह कक्षा कहीं भी हो। पाठ्यक्रम जीवंत और प्रासंगिक होना चाहिए। कक्षा किसी पुरानी इमारत में हो सकती है, चाहे मैं रोशनी में पढ़ाऊं, या कहीं भी पढ़ाऊं। और यह इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षक उसके बारे में क्या सोचती है, और कक्षा में उस पाठ्यक्रम को, पाठ्य पुस्तक के साथ या उसके बगैर, सार्थक ढंग से कैसे पूरा करती है। और यह सब अथॉरिटी के बावजूद हो सकता है, व्यवस्था के बावजूद हो सकता है। यह एक संघर्ष है यकीनन। कोई नहीं कह रहा है कि यह आसान है। मगर सवाल है कि वह विचार क्या है जिसे लेकर शिक्षकों के साथ शुरुआत की जा सकती है, और कैसे शिक्षक को विश्वास दिलाया जाए कि उसकी भूमिका निर्णायक है?

अंजलि

मैं सिर्फ यह कहना चाहती थी कि अच्छे शिक्षक तैयार करने के दो तरह के मॉडल्स हैं। पहला है शिक्षकों की शुरुआती तैयारी का मॉडल; इंजीनियर या डॉक्टर या यहां तक कि वकील बनाने के लिए चार साल की विश्वविद्यालयीन शिक्षा होती है। जहां इंजीनियर अधिकांशतः निर्जीव वस्तुओं के साथ काम करते हैं, शिक्षकों से इन्सान के विकास की उम्मीद की जाती है, मगर हम शिक्षकों की तैयारी के साथ इतनी कंजूसी करते हैं। हमारे यहां स्कूल के बाद दो साल का एक डी.एड. कोर्स है जो डिप्लोमा है। और सेकंडरी स्कूलों के लिए स्नातक उपाधि के बाद बी.एड. कोर्स है। मगर इसके साथ ही हमारे यहां अच्छे स्कूलों के ऐसे मॉडल्स हैं जहां अत्यंत संवेदी शिक्षक हैं जिनके पास कोई बी.एड. या एम.एड. अर्हता नहीं है। काम करते-करते आप देखते हैं कि जिन सारे लोगों ने इस दिशा में काम किया है उन्होंने भी इसी आधार पर किया है कि 4-5 साल काम करने के बाद ही आप चीज़ों पर वास्तविक पकड़ बना पाते हैं।

एकलव्य में हमने सेवाकालीन प्रशिक्षण से शुरू किया था, और इतने सालों में हममें से कुछ लोग इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हम इस आदर्श को विकसित करने के लिए ज़रूरी समय, ऊर्जा, प्रतिभा, व मेहनत में कंजूसी कर रहे हैं। 'शिक्षक सृजनशील होना चाहिए', 'शिक्षक चाहें तो कर सकते हैं' - ये धारणाएं मन में बैठी हुई हैं। मैं दो सुझाव देना चाहूंगी। शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम ढांचे का मसौदा राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की वेबसाइट पर उपलब्ध है। इसमें एक सघन सेवा-पूर्व तथा सतत शिक्षक विकास का प्रस्ताव देने का प्रयास किया गया है। कई सारे आलोचक हैं और व्यावहारिक लोग हैं जो कह रहे हैं कि जब 1-2 साल का प्रशिक्षण नहीं हो पाता, तो 4 साल का प्रशिक्षण कैसे होगा। मगर मैं लोगों से अनुरोध करूंगी कि विश्वास करें कि एक ज़्यादा आदर्श परिस्थिति की ओर बढ़ने के लिए सकारात्मक सुझाव देने का यह एक अवसर है।

दूसरा, मैं सुझाव दूंगी कि कृष्ण कुमार का वह आलेख पढ़ें जिसमें उन्होंने इस सवाल पर विचार किया है कि क्यों भारत एक पाठ्य पुस्तक संस्कृति है। पश्चिम की पाठ्यक्रम संस्कृति है, उदाहरण के लिए ब्रिटेन, में मुख्यधारा का शिक्षक एक शोधकर्ता है और पाठ्यक्रम निर्माता है। क्यों भारत के इतिहास में मुख्यधारा का शिक्षक पाठ्य

पुस्तक पर निर्भर है? कुमार ने इस सवाल को बहुत अच्छे से संबोधित किया है।

सारांश

अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह में पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रम के लिए पाठ्यक्रम विकसित करने के अपने अनुभव के संदर्भ में वक्ता ने किसी भी पाठ्यक्रम के लिए स्थानीय भाषा में और स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति के अनुकूल सामग्री विकसित करने के महत्व को रेखांकित किया। वक्ता ने इस बात पर ज़ोर दिया कि सीखना अनुभव-आधारित होना चाहिए ताकि वह सार्थक रहे। शिक्षकों की भागीदारी बढ़ाने, सरकारी संस्थाओं के साथ काम करने की चुनौतियां, समुदाय सम्बंधी शोध को रचनात्मक और व्यावहारिक ढंग से इस्तेमाल करने की ज़रूरत, पर्यावरण कानून, नियोजन, नीति व प्रशासन के क्षेत्र में स्रोत व्यक्तियों की आवश्यकता वगैरह पर वक्ता के प्रस्तुतीकरण में व उसके बाद हुई चर्चा के दौरान बातचीत हुई। प्रमुख सवाल यह था कि शिक्षा के माध्यम से पर्यावरण विशेष में और टिकाऊ विकास के संदर्भ में वैकल्पिक जीविकाएं कैसे उपलब्ध कराई जाएं।